'शांतिपर्व' में वर्णित राज्य की उत्पत्ति का 'अनुबंध सिद्धान्त'

डॉ.विद्वेश कुमार
प्रवक्ता नागरिकशास्त्र, जनता इंटर कॉलेज, फलावदा,मेरठ

भारत के प्राचीन ग्रन्थों में राज्य की उत्पत्ति सम्बन्धी पाश्चात्य सिद्धान्तों के प्रतिरूप खोजने के प्रयास से यह बात सिद्ध हो जाती है कि प्राचीन भारत में राजपद की प्रकृति, उत्पत्ति, अधिकार एवं दायित्वों के सम्बन्ध में सुस्पष्ट विचार थे। राज्य की उत्पत्ति के सामाजिक समझौतो के सिद्धान्त के सूत्र प्राचीन भारतीय ग्रन्थों यथा ब्राह्मणों, दीघनिकाय, 'अर्थशास्त्र', महावस्तु और शांतिपर्व के राजधर्म प्रकरण में पर्याप्त रूप से विद्यमान है। प्रस्तुत लेख में 'शांतिपर्व' के राजधर्म प्रकरण में वर्णित राज्य के सामाजिक समझौते के सिद्धान्त के स्वरूप को रेखांकित किया गया है। प्रस्तुत लेख को पूर्णता प्रदान करने में उपलब्ध प्राथमिक स्रोत (शांतिपर्व) तथा द्वितीयक स्रोतों का अवलम्बन लिया गया है।[1]

शांतिपर्व में वर्णित सामाजिक समझौते का सिद्धान्त इसके अध्याय 67 से सम्बन्धित है। अर्थात् शांतिपर्व के अध्याय 67 में राज्योत्पत्ति के अनुबंध सिद्धान्त का विवेचन हुआ है। शांतिपर्व का राजधर्म प्रकरण ईशा की पहली शताब्दी से पहले का नहीं रखा जा सकता।[2] राजपद् की उत्पत्ति के सम्बन्ध में शांतिपर्व में दो परिकल्पनाएँ सिद्धान्त रूप में रेखांकित की जा सकती है–

प्रथमतः शांतिपर्व के अध्याय 59 में राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में परिकल्पना की गयी है जोकि दंड और दण्ड–नीति के महत्व के व्यापक विवेचन से आरम्भ होती है। **द्वितीयः** शांतिपर्व के 67वें अध्याय में राज्य की उत्पत्ति की जो दूसरी कल्पना की गयी है उसे स्पष्टतया राज्य की उत्पत्ति का अनुबंध सिद्धान्त माना जा सकता है। इन दोनों परिकल्पनाओं में राज्य की उत्पत्ति के अनुबंध सिद्धान्त के तत्व समाविष्ट है।[3]

'शांतिपर्व' की राज्य की उत्पत्ति की पहली परिकल्पना के अन्तर्गत अध्याय 59 में कहा गया है कि प्रशासन का उत्तरदायित्व संभालने के लिए विष्णु ने एक मानस पुत्र पैदा किया। लेकिन उसने तथा उसके अनेक वंशजों ने सन्यास ले लिया जिसके फलस्वरूप अंततः वेन का अत्याचारी शासन प्रारम्भ हुआ।[4] फलस्वरूप ऋषियों ने उसे मारकर उसकी दाई जाँघ से पृथु को उत्पन्न किया, जो विष्णु की आठवी पीढी में पडता था। एक अनुबंध करके ऋषियों ने स्पष्ट शब्दों में वे शर्ते निर्धारित की जिनका पालन करके ही पृथु

सिहाँसनसीन रह सकता था। ऋषियों ने उससे प्रतिज्ञा करायी कि वह दण्ड नीति के अनुसार शासन करेगा, ब्रह्मणों को दण्ड से परे मानेगा, और संसार को वर्ण संकरता से बचाएगा।[5] इस पर पृथु ने ऋषियों के नेतृत्व में देवताओं को वचन दिया कि वह सदा नरों में वृषभ रूप महाभाग्य ब्रह्मणों की पूजा करेगा[6] तथा इसके पूर्व भी उसने आश्वासन दिया था कि वह वही करेगा जोकि उचित और राज्यशास्त्र से समस्त है।[7] यहाँ इस बात पर दो मत है कि अनुबंध जन–सामान्य के साथ हुआ था अथवा विशेषाधिकार प्राप्त ब्रह्मणों के साथ प्रो0 रामशरण शर्मा का मत है कि यह अनुबंध मूल शासक के साथ नहीं हुआ फिर भी यह प्रतीत होता है कि वास्तविक राजपद पृथु से प्रारंभ हुआ, जिसके नाम पर उस संसार का नाम पृथ्वी पडा तथा अनुबुंध जनसामान्य के साथ नहीं, बल्कि ब्रह्मणों के साथ हुआ जो राजा से विशेषाधिकार और विशेष सुरक्षा पाने का दावा करते है।[8] इसके विपरित प्रो0 काशीप्रसाद जायसवाल का मत है कि अनुबंध जनसामान्य के साथ हुआ था। इस मान्यता के लिए जायसवाल लिखते है कि राजा की प्रतिज्ञा पर लोगों ने 'एवमस्तु' उच्चारित किया।[9] यहाँ प्रो0 रामशरण शर्मा का मत है कि प्रतिज्ञा स्पष्टतः देवताओं और परमर्षियों[10] ने दिलायी और राजा द्वारा प्रतिज्ञा किये जाने पर वही 'एवमस्तु' कहते हैं तथा राजा पृथु पूरी प्रतिज्ञा नहीं दुहराता बल्कि स्पष्ट शब्दों में कहता है कि वह सदा ब्रह्मणों का आदर करेगा। इस परिकल्पना में वर्णित अनुबंध में ब्रह्मणों की विशेष स्थिति की यह सैद्धान्तिक मान्यता मौर्येत्तर काल गुप्त काल में उनके बढते महत्व की परिचायक है। यह वह काल था जब शुंग, कण्व, सातवाहन, आदि अनेक ब्रह्मण वंश देश में शासन कर रहे थे। इसी संदर्भ में हमें क्षत्रिय शब्द का एक विलक्षण व्युत्पत्यर्थ देखने को मिलता है, जिसमें इस शब्द का अर्थ क्षत (धाव) से ब्रह्मणों की रक्षा करना बताया गया है।[12] राजा पर वैश्यों और शुद्रों की रक्षा की जिम्मेदारी नहीं दी गयी है। जनसामान्य के प्रति राजा के एकमात्र दायित्व का आभास राजा शब्द की इस व्यवस्था से मिलता है कि राजा वह है जो जनसामान्य को रंजित (आनंदित) करे।[13]

'शांतिपर्व' के 67वें अध्याय में राज्य की उत्पत्ति की जो दूसरी कल्पना है इसे स्पष्टतः राज्य की उत्पादित का अनुबंध सिद्धान्त माना जा सकता है।[14]

इसमें सामाजिक और राजनीतिक दोनों प्रकार के अनुबंध सिद्धान्त वर्णित है। इसमें कहा गया है कि प्राचीन काल में जब अराजकता व्याप्त थी तब लोगों ने आपस में करार किया। इसके अनुसार उन्होंने उन

लोगों का बहिष्कार करने का निर्णय किया जो वाचाल थे, क्रूर थे, परधनहर्ता थे, और परस्त्रीगामी थे। साफ है कि यह परिवार और सम्पत्ति जैसी संस्थाओं के अनुरक्षण के लिए एक सामाजिक करार था।

राज्योद्य की अगली अवस्था का संकेत राजनीतिक अनुबंध की स्थापना से मिलता है। कहा गया है कि लोगो ने अनुबंध (समय) का पालन नहीं किया, जिससे उनके दुर्दिन आए। अतः उन्होंने ब्रह्मा से जाकर एक ऐसा अधिपति (ईश्वर) मांगा जिसकी पूजा वे साथ मिलकर करेंगे और जो उनकी रक्षा करेगा। ब्रह्मा ने मनु से इनका शासन संभालने को कहा, लेकिन उन्होंने इंकार कर दिया, क्योंकि दुष्ट और झूठे लोगों पर शासन करना दुष्कर कार्य था। परंतु लोगो ने मनु को यह प्रतिज्ञा करके तैयार किया कि वे उसके कोष की वृद्धि (कोषवर्धन) के लिए अपना 1/20 पशु, 1/50 सोना और 1/10 अन्न देंगे।[15] उन्होंने यह भी प्रतिज्ञा की कि जो लोग शस्त्रास्त्र प्रयोग में सबसे आगे होंगे, वे उसी तरह मनु का अनुसरण करेंगे जिस तरह देवगण इंद्र का करते हैं।[16] इसके बदले उन लोगो ने राजा से अपनी रक्षा की मांग की, और यह वचन भी दिया कि राजरक्षित प्रजा जो पुण्य अर्जित करेगी, उसका चोथा भाग राजा को मिलेगा। मनु ने सहमत होकर एक बडी सेना के साथ दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया।

'शांतिपर्व' के दोनों सिद्धान्तों में महत्त्व की बात यह है कि इनमें राजा के निर्वाचन का जिक्र नहीं है। इसके विपरित, इनमें राजपद की उत्पत्ति का श्रेय विष्णु और ब्रहमा जैसे देवताओं को दिया गया है। ब्राह्मणों, कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' और बौद्य ग्रंथों में जो निर्वाचन तत्व देखने को मिलता है, वह 'शांतिपर्व' में नहीं रह गया है। इस अर्थ में शांतिपर्व में प्रतिपादित राजा की उत्पत्ति का सिद्धान्त लोकविरोधी समझा जा सकता है।[17] 'साथ ही यह ध्यान देने का विषय है कि शांतिपर्व के दोनों सिद्धान्तों के अलग–अलग उद्देश्य है। जहाँ पहले सिद्धान्त का प्रयोजन पुरोहित (ब्राह्मण) वर्ग के हित में राजशक्ति पर अंकुश लगाना है, दूसरा सिद्धान्त जिस प्रसंग में प्रस्तुत किया गया है, उससे राजशक्ति की महत्ता का पता चलता है। राजा के अभाव से उत्पन्न बुराइयों के विशद वर्णन से राजशक्ति की आवश्यकता पर जोर पडता है। इसके अलावा, प्रजा पर जो दायित्व डाले गये है, वे राजा पर डाले गये दायित्वों की तुलना में अधिक है। जिन करों का उल्लेख हैं, उनमें से दो सोने और अन्न के रूप में लिये जाने वाले कर हैं जो कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी है। किंतु कौटिल्य के वस्तु कर के स्थान पर इसमें पशुधन पर लगाया जाने वाला कर है।'[18] साथ ही इसमें राजा को

कर का भागी बनाया गया है, अर्थात् प्रजा द्वारा अर्जित पुण्य में राजा को अंशदान देने की प्रतिज्ञा है। संभवतः इसका संबंध विशेष रूप से ब्रहमणों द्वारा अर्जित पुण्य से है क्योंकि साधारणतः ब्रह्मण करमुक्त थे। अतएव दूसरी कल्पना में राजशक्ति का औचित्य सिद्ध किया गया प्रतीत होता है, जिससे पता चलता है कि यह क्षत्रिय विचारधारा की उपज है। पहली कल्पना में ब्रह्मणों की शक्ति पर जोर दिया गया है, जो बतलाता है कि यह ब्राह्मण विचारधारा की देन है।

'शांतिपर्व' में वर्णित दूसरे अनुबंध की विशिष्टता यह है कि करों के अतिरिक्त प्रजा को यह जिम्मेदारी दी गई है कि वह राजा को सर्वोत्तम योद्धा सैनिक सेवा के लिए दें। इस स्रोत के प्रासंगिक श्लोंको के कुछ अन्य पाठों में लोगों द्वारा राजा को सुंदर कन्या अर्पित किए जाने का उल्लेख है, हालांकि यह बात 'महाभारत' के समीक्षित संस्करण में नहीं है। ये श्लोक हमें समुन्द्रगुप्त के अधीनस्थ शासकों के दायित्वों की याद दिलाते हैं। जो भी हो, यह साफ है कि सैनिक सेवा की व्यवस्था में गुप्त काल की अर्द्ध सामंती प्रथा की झलक दिखाई देती है। राज्य विषयक प्राचीन भारतीय परिभाषा की दृष्टि से, दूसरा अनुबंध सिद्धान्त राज्य की उत्पत्ति के संबंध में सर्वाधिक पूर्ण सिद्धांत माना जाना चाहिये। इसमें राजा और प्रजा दोनों शामिल है, जो क्रमशः स्वामी और जनपद से साम्य रखते हैं। लोगों के राजा को कर चुकाने और सैनिक सेवा देने के दायित्वों से प्रकट होता है कि कोष और दंड के तत्व विद्यमान थे।

इस प्रकार, 'शंतिपर्व' के 67वें अध्याय में राज्य की उत्पत्ति का जो अनुबंध सिद्धान्त प्रस्तुत किया गया है, उसमें राज्य के सात अंगों में से चार महत्त्वपूर्ण अंग स्पष्टतः देखे जा सकते हैं। स्पष्टतः राज्योत्पत्ति का अनुबंध सिद्धान्त राजनीतिक विचारधारा में प्राचीन भारतीय विचारकों का मौलिक योगदान माना जाना चाहिये।

सन्दर्भ सूची

1. प्रो0 रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में राजराजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ, राजकमल नई दिल्ली 2005, पृष्ठ 78।
2. वही पृष्ठ 78।
3. वही पृष्ठ 85।
4. शांतिपर्व 59, पृष्ठ 94–99।
5. वही 59, पृष्ठ 100–114।
6. वही पृष्ठ 115।
7. वही पृष्ठ 59, 108।
8. प्रो0 रामशरण शर्मा, पूर्वोक्त पृष्ठ 85।
9. प्रो0 काशीप्रसाद जायसवाल, हिन्दू पॉलिटी, पृष्ठ 225।
10. शांतिपर्व 59, 109।
11. वही पृष्ठ 59, 118।
12. वही पृष्ठ 59।
13. वही पृष्ठ 59, 127।
14. प्रो0 रामशरण शर्मा पूर्वोक्त पृष्ठ 86।
15. शांति पर्व 67, 19–23
16. वही 67, 24
17. प्रो0 रामशरण शर्मा पूर्वोक्त पृष्ठ 87
18. वही 87